ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-2, No.-2, PP-360-364,YEAR-2015

भारतेंदु हरिश्चन्द्र (श्री चंद्रावली नाटिका का भक्ति निरूपण)

❑ दर्शना कुमारी

सार *– प्रस्तावना भारतीय दृष्टिकोण के साथ–साथ पाश्चात्य नाटक सिद्धान्तों को अपना कर भारतेन्दु जी ने उदारता का परिचय दिया है। इस आधुनिक युग के नाटककारों के स्थान में भारतेंदु जी का अग्रणी स्थान है। यद्यपि नाटक सिद्धान्तों का मूल आधार शास्त्र है। परन्तु भारतेन्दु जी ने पाश्चात्य सिद्धान्त से पाठ्य रचना शिल्प से सम्बद्ध विचारों को ही ग्रहण किया है। भारतेंदु जी ने संस्कृत नाट्यचार्यो की भांति रस को नाट्यात्मा आत्मा के रूप में स्वीकृति देकर एवं सामान्यता सुखांत नाटकों की रचना का समर्थन करके श्री चन्द्रावली नाटिका का सृजन करके संस्कृत नाटक शास्त्र की रूद्ध गति को पुनः प्रभावित करने में सक्रिय योगदान दिया है। भरतेन्दु जी ने श्री चन्द्रावली नाटिका में संस्कृत आचार्य द्वारा बहु विवेचित पंचसंधि, अंकसंख्या आदि रूढ़ नियमों को नवीन चेतना की सहज अभिव्यक्ति प्रदान की है।*

"हिन्दी में नाट्य शास्त्र की दिशा में पहला प्रयत्न मेधावी कवि और नाटककार साहित्य भारतेंदु हरिश्चन्द्र जी का ही है। उनके निबन्ध का शीर्शक है नाटक। यह निबन्ध अट्ठारह सौ तिरासी में प्रकाश में आया। यह लेख अपनी मूल प्रकृति में व्याख्यात्मक होते हुए भी समीक्षात्मक और कुछ दूर तक सैद्वान्तिक बन गया है।"[1]

श्री लक्ष्मी सागर वार्श्णेय' "भारतेंदु जी ने ना तो प्राचीन नाट्य शास्त्र के सिद्धान्त ज्यों के त्यों ग्रहण किए और ना पाश्चात्य नाट्यशास्त्र का अंध ाानुकरण ही किया। काल और परिस्थिति के अनुसार सृहृदयजनों की परिवर्तित रूचि देखते हुए उन्होंने नवीन पद्धतियों का समन्वय उपस्थित किया।"[2]

नाटक का स्वरूप नाटक शब्द की व्याख्या करते हुए भारतेंदु जी ने लिखा है नाटक शब्द का अर्थ है– "लोगों की क्रिया को नट कहते हैं। विद्या के प्रभाव से अपनी वा किसी वस्तु के स्वरूप के फिर कर देने वाले को व स्वयं दृष्टि रोशन के फिरने को। नाटक में पात्रगण अपना स्वरूप परिवर्तन करके राजा आदि का स्वरूप धारण करते हैं। या वेश विन्यास के पश्चात रंगभूमि में स्वीकार्य कार्य साधन के हेतु फिरते हैं।[3]

भारतेंन्दु जी कहते हैं– दृष्य काव्य की संज्ञा रूप को में नाटक ही मुख्य है इससे रूपक मात्र को नाटक कहते है।[4]

नट की क्रिया होने के कारण ही नाटक संज्ञा की सार्थकता है। नट की क्रिया से भारतेंन्दु का अभिप्राय अभिनय से है। नट की क्रिया शब्द व्यापक है। तथा इस से अभिप्राय नटों द्वारा प्रस्तुत समस्त रंगमंच है क्रियाकलाप से है, अतः इसे केवल नाटक तक ही सीमित नहीं किया जा सकता।

हिंदी गद्य विधाओं का विकास आधुनिक भारतेंदु युग से प्रारंभ होता है। यद्यपि आधुनिक भारतेंदु युग से पूर्व रीवा नरेश रचित आनंद रघुनंदन एवं भारतेंदु के पिता, गिरधर दास कृत 'नहुश' नामक उपलब्ध होते है। डॉ लक्ष्मी सागर वार्श्णेय ने कहा 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हिंदी नाट्य साहित्य का जमाना है। वास्तव में हिंदी नाट्य साहित्य का जन्म 19वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में नवोत्थान कालीन भावना के फलस्वरूप संस्कृत साहित्य के अध्ययन और नवीन शिक्षा के अंग्रेजी साहित्य के अनुशीलन

बी0डी0एम0म्यु0 कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद (उ0प्र0) भारत

तथा जीवन की नवीन परिस्थितियों के अंतर्गत अनुकूल वातावरण के कारण हुआ, जो वृक्ष काल गति से सूख गया था। वह फिर हरा भरा हो उठा।[5]

भारतेंदु हरिश्चंद के अनुसार नाटक कार को अपेक्षित रसिक उदार गुणाकार तथा विश्व रंजक होना चाहिए। इन गुणों से संबंधित होने पर ही वह इस नाटक के सृजन में प्रवृत्त हो सकता है उदाहरण–

"परम प्रेमनिधिरसिक–वर अति उदार गुन–खान।
जन–जन रंजन आशु कवि को हरिश्चन्द्र समान"।[6]

प्रस्तुत उदाहरण से स्पश्ट होता है कि भारतेंदु हरिश्चन्द्र जी में सहृदता एवं भावप्रवणता प्रत्येक नाट्य–प्रणेता का वांछनीय गुण हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा लिखा गया श्री चन्द्रावली संवत 1933 सन 1876 में छपा था। इसका अनुवाद पंडित गोपाल शास्त्री ने किया। कथा का मूल स्रोत चंद्रावली एवं भगवान श्री कृश्ण के मध्य रचा गया। भक्ति भाव से प्रेरित नाटक है। श्री चंद्रावली नाटिका की कथानक चार अंको में विभक्त है।

कथा का प्रांरभ ब्राहमण के आशीर्वाद से होता है।

नेतिनेति तत् शब्द प्रतिपाद्यसर्व भगवान।
चंद्रावली चकोर श्री कृश्ण करौकल्याण।[7]

सूत्रधार और पारी पार्श्वक में वार्तालाप होता है। सूत्रधार हरि भजन गाते हुए पर्दे के पीछे चले जाते है। उसके पश्चात् आनंद से झूमते हुए सुखदेव जी आते है वहां संसार के भक्तों का ज्ञान देते है। कि वह जो परम प्रेम अमृत में एकांत भक्ति है जिसके उदय होते ही अनेक प्रकार के आग्रह स्वरूप ज्ञान विज्ञान आदि अंधकार हो जाते है और जिसके चित्त में आते ही निगड़ आपसे आप खुल जाता है। कुछ सोच कर शिव की अराधना करते है ब्रज की भूमि पवित्र भूमि है धन्य है उस भूमि की रज। नारद जी कहते है ब्रज परम प्रेम आनंदमई ब्रज बल्लभ लोगो का दर्शन करके आपने अपने को पवित्र किया और मैं उसकी विरहवस्था बरसों से भूल गया था। वह गोपी जन धन्य है उनके गुणगान को कौन कह सकता हे। वह गाने लगते है। नारद कहते है विशेश किसका कहूं और न्यून किसका कहूं एक से एक बढ़कर है श्री कृष्ण ही है लीला हो रही है तथापि सब गोपियों में श्री चद्रांवली के प्रेम की चर्चा आजकल ब्रज के डगर डगर में फैली हुई है।नेपथ्य मे बंसी का शब्द होता है नारद और शुकदेव जी चले जाते है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र कृश्ण की परम भक्त कहे जाते है उन्होनें कथा का आंरभ ही कृश्ण ही है धर्म के रक्षक हैं। परम आनंद रूप के प्रकाशक है।

प्रथम अंक प्रारंभ होता है स्थान श्री वृंदावनः गिरिराज दूर से दिखता है श्री चंद्रावली और ललिता आते है। श्री चंद्रावली कृश्ण की आराधना से की है। श्री कृश्ण की भक्ति में लीन है वह उनके रूप सौंदर्य में खोई हुई है यहां ललिता से श्री चंद्रावली के माध्यम से कृश्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन किया है कि वर्शनवदंनंदन शवन इन पर मुक्त हो जाता है व संसार को भूल जाता है। प्रेम संयोग और वियोग दोनों अवस्थाएं पवित्र हैं निर्मल कृश्ण रूपी की प्राप्ति का प्रश्न करती हुई दिखाई गई है। उस प्रेम का आदर्श उपस्थित करते हैं। जिसमें मानवीय संबंधो की दृश्टि से सबसे अधिक घनिश्ठता और तल्लीनता होती है।

त्योंही हरिश्चंद्रजूवियोग संयोगदोउ,
एक सेतिहारे कछु लखि नपरत है।।[8]

..... ।। भारतीय हरिश्चंद्र ने श्री कृष्ण को अभेद होने का परिचय कराया है। कृश्णा प्रेम की निधि भंडार हैं दशको में श्रेश्ठ है गुणों की खान हैं, चाहे चन्द्रमा इधर से उधर हो जाए चाहे सूर्य इधर से उधर हो जाय, चाहे जगत के नियम टल जाए किन्तु हरिश्चन्द्र कहते हैं कि उनका प्रेम अटल है, अविचल है। उन्हें इसके अतिरिक्त कोई दिखाई नहीं देता।

श्री कृष्ण का अंग कोमल है रंग सांवला सलोना है घुंघराले बाल हैं, विशाल भुजाओं वाहे हैं मुख चन्द्रमा के समान है जो भी एक बार उन्हे देख लेता है फिर वह उन्हीं में खो जाता है। ऐसी शोभा कहीं अन्यत्र दिखई नहीं पड़ती। चन्द्रावली प्रीतम के सुख से सुख मानती हैं। श्री कृष्ण का ध्यान उसे आ जाता है। वह नेत्रों में जलभरकर मुख नीचा करके सखियों के साथ चली जाती हैं।

दूसरा अंक स्थान केले का बन, संध्या का समय कुछ बादल छाए हुए हैं योगिनी बनी हुई श्री चन्द्रावली आती हैं। वृक्ष के नीचे बैठ जाती हैं। चन्द्रावली कहती हैं तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण हैं और निश्चिय बिना तुम्हारी कृपा के इसका भेद कोई नहीं जानता। जाने कैसे.....। पर प्यारे तुम्हारा प्रेम इन दोनों से विलक्षण है। क्योंकि यह अमृत तो उसी को मिलता है, जिसे तुम आप देते हो वह अपनी व्यथा कह उठती है–

जग जानत कौन है प्रेम विथा,
केहि सो चर्चा या वियोग की कीजिए।
..... मरम की पीर ना जानतकोय।[10]

यहाँ पराकाश्ठा है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन किया है जिसको यह हो जाता है वह सारे संसार को भूल जाता है। भक्ति एक ऐसा रस है, जो प्राणीतन्मय हो जाता है उसके लिए सारा संसार अनजान हो जाता है। संसार की सारे पदार्थ प्राणी के लिए निःसार हो जातो हैं। ब्रज वृन्दावन की चराचर सृश्टि की मित्रता का कथन करके यही प्रमाणित किया है कि उसका आनंद रूप निर्विकल्प और अविनाशी है। उसकी श्रद्धा और प्रेम भक्ति के विशय है वह उनके चिंतन में खो जाती है। वह कहती है तुम पहले तो सुख देते हो सताते हो तुम्हारा हमारा क्या नाता है।

हंसिकै हरिश्चन्द्र ना बोले कभूजिया दूरहिं हों ललचाया रहे। चन्द्रावली के नेत्रों से आंसुओं की धारा बह रही है कहती है– "प्राणनाथ! अरे नेत्रों अपने किए का फल भोगो"। या

पहले तो लोक लाज त्याग कर उनकी इच्छा की और अब रो रो के प्राण ताज रही है अपने किए का फल स्वयं ही फल चाखना पड़ेगा। हरिश्चन्द्र कहते हैं –

इन दुखी आन कों ना सुख सपने हूँ मिल्यों,
यूं ही सदा व्याकुल विकल अकुलाएंगी।.....।
जिन आंखिन में तुवरूपबस्यो
उन आंखिन सों अब देखिए का।[11]

तभी वनदेवी संध्या और वर्शा आते हैं। चन्द्रावली आंखें बंद किए हुए बैठी है। वनदेवी ऊंचे स्वर में पूछती हैं कि मैं कब से आवाज लगा रही हूँ, किन्तु तुम क्यों नहीं सुनती हो। चन्द्रावली नेत्र बंद किए हुए ही कहती है अरे क्यों चिल्लाए हैं चोर भाग जाएगा माखन चोर, चीरन को चोर, वन देवी का हाथ पकड़कर चन्द्रावली कहती है प्राणनाथ अब कहां भागोगे। यों हृदय से भी निकल जाओ तो जानू, तुमने हाथ छुड़ा लिया, तो क्या हुआ, मैं हाथ नहीं छोड़ने की हा! अच्छी प्रीत निभाई! जाती है। श्री चन्द्रावली वियोगिनी की तरह वन वृक्षों से कृश्ण की बारे में पूछती है –

अहो अहोवन के रूख कहूं देख्यौ फिर प्यारो।[12]

.....तुम देखे कहूं प्राण प्यारे मनमोहन हरि। कहकर एक पेड़ को गले लगा लेती है।

चन्द्रावली कहती है हां! प्राणनाथ! हां प्यारे! अकेले छोड़ के कहां चले गए?नाथ ऐसी क्या बदी थी! प्यारे यह वन विरह का दुःख करने के हेतु बना है कि तुम्हारे साथ बिहार करने को? हॉ सारा संसार मुझ पर हंस रहा है विधाता ने मेरे भाग्य में क्या लिख दिया है। मेरे हृदय में महादुःख समाया हुआ है। वनदेवी संध्या उसे तसल्ली देती है चांद निकल आया है रात्रि हो गई है। चन्द्रावली घबराकर कहती है, क्या सूरज निकल आया भोर हो गया। वह बाबरी सी होकर डोलती है। संध्या, वर्शा, वनदेवी एक किनारे पर जाकर बैठ जाती हैं। चन्द्रावली वर्शा ऋतु को उलाहना देती है। वह कहती है– अब मैं कैसे घर पहुँच जाऊंगी। अब तो प्रिय से मिलने का भी रास्ता नहीं सूझ रहा। हां! जोबन आंखों से देखने में कैसा भला दिखाता था, वहीं अब कैसा भयंकर दिखाई पड़ता है। देखो, सब कुछ है। एक तुम ही नहीं हो, नेत्रों से आंसू गिरते हैं ..... अरे कोई देखो मेरो छाती ब्रज की तो नहीं है अब तक"। वह मूर्छित होकर गिर जाती है। सख्यिां संभालती हैं।

तीसरा अंक तीसरा पहर गहरे बादल छाए हुए हैं। स्थान– तालाब के पास एक बगीचा। चन्द्रावली अपनी सखियों के साथ घूम रही है। बरसात का समय है। सभी हंसी–ठिठौली करती हैं। चन्द्रावली

गाती हैं –

हरिश्चन्द्र आंसू छगनीर बरसाए प्यारे
पिया गुन मानसोमलार उचरत हैं।.....
विरह हिंडोले नैन भर झूल्योई करता है। या
देखि देखि दामिनी की दुगुन दमक पीत
पट छोरे मेरे सिर फहरि फरहि उठै।[13]

(उठकर सब घर चली जाती है)

चौथा अंक स्थान चन्द्रावली जी की बैठक। खिड़की में से यमुना जी दिखाई पड़ती है तभी यह जोगन आती है। वह गाती है –

कोई एक जोगिन रूप कियैं।
..... सांचीढरि प्रेम की मुरति अखियां निरखहिं पिराई।[12]

चन्द्रावली यमुना की शोभा हिंदी है, उसको देख कर उस काबिल है और बढ जाता है वह गाती है–

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सोपरसन हित मनहुं सुहाये।.....
कैब्रजतियान बदन कमल की झलकती झांई।
कै ब्रज हरिपद परस हेतु कमला बहुआई। या
मनु हरि दर्शन हेतु चंद जल बसतसुहायो। .....। [14]

जोगिन कहती है निःसंदेहइसका प्रेम पक्का है। योगिनी और चन्द्रावली में वार्तालाप होता है जोगिनी सारंगी छोड़कर गीत गाती है –

पचि मरतवृथा सब लोग जोग सिरधारी।
.....।
सांची जोगिनी पिए बिनावियोगिनी नारी।[15]

चन्द्रावली कहती हैं– हा हा संगीत और साहित्य में भी कैसा गुन होता है कि मनुश्य तन्मय हो जाता है। उस पर भी जले परनोन हाय नाथ हम अपने अनुभव सिद्ध अनुराग और बड़े हुए मनोरथ ओं को किसको सुनावे जा काव्य के एक एक तुक और संगीत एक एक तान से लाख–लाख गुण बढ़ते हैं। चन्द्रावली रूप माधुरी और चरित्र का ध्यान करके ही करूणा में खो जाती है। वह सोचने लगती है कि उसके हृदय में समुद्र का आवेग उमड़ पड़ता है। वह उन्मादी हो जाती है। बेसुध होकर गिर जाती है, कि तभी एक बिजली सी चमकती है और जोगिन श्री कृश्ण बनकर श्री चन्द्रावली को उठाकर गले लगा लेते हैं। वह गाने लगती है–

"पिय मोहि राखौगि भुजन में बांधिए"[16] .....।

ऐसा सुनकर भगवान कहते हैं, तू तो मेरो ही स्वरूपा है। वह सब प्रेम है। मैं निश्ठुर नहीं हूॅ। मैं तो प्रेम हूॅ इनको बिना मोल को दास हूॅ, अब हम तुम कभी अलग नहीं होंगे।

भगवान की आंख में आंसू भर आते हैं। चन्द्रावली उनकी आंखां में आंसू देख कर गले लगा लेती हैं और विशाखा आती है वह गाती है–

स्वामिनी में भेद नहीं है ताऊ में रस की पोशक ठैरी। बस, अब हमारी दो उनकी यही विनती है कैतुमदोऊं गल बाहीं दैकै बिराजो और हम युगल जोड़ी को दर्शन करि आज नेत्र सफल करैं।[16]

चंद्रावली और भगवान युगम स्वरूप बैठते हैं।

जुगल रूप छवि अमित माधुरी .....।[17]

चन्द्रावली कहती है नाथ अब और कोई इच्छा नहीं है हमने आपके दर्शन पा लिए हैं (फूलों की वर्षा होती है, बाजे बजते हैं जवनिका गिरती है) भारतेंदु जी के श्री चन्द्रावली नाटिका में नाटक की आत्मा रस है।

भारतेंदु जी ने रस की सर्वाधिक महत्व दिया भी है। प्रस्तुत नाटिका में श्रृंगार कि दोनों पक्ष संयोग और वियोग तथा भक्ति रस का विवरण मिलता है।

रस सिक्त परिपूर्ण भाषा की रचना की है, उन्होंने रस को अनिवार्य धर्म माना है प्रस्तुत चन्द्रावली नाटिका में पूर्ण रूप से ब्रजभाषा का प्रयोग प्राप्त होता है। यह भाषा इतनी रस पूर्ण है जो हृदय को भावविहृलकर देती है। भक्ति का इतना सुंदर वर्णन भारतेंदु जैसे महान कवि ही कर सकते है।।

चन्द्रावली नाटक की समाप्ति परमानंद रूप और कृष्ण और चंद्रावली कर सकते हैं। चन्द्रावली नाटक की समाप्ति परमानंद रूप और कृष्ण और चन्द्रावली युगल रूप में हमारे कवि के इष्ट देव हो जाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नाट्यकला मीमांसा, सेठ गोविंद दास पृष्ठ 109.
2. श्री चन्द्रावली नाटिका, भूमिका, पृष्ठ 11.
3. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास, डॉ0 शांति मलिक, पृष्ठ 51.
4. नाटक, पृष्ठ 5.
5. हिंदी नाटकः सिद्धान्त और समीक्षा, लेखक रामगोपाल सिंह चौहान पृष्ठ–11.
6. श्री चन्द्रावली, नाटिका पृष्ठ 48.
7. भारतेंदु समग्र पृष्ठ 440.
8. भारतेंदु समग्र।
9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17.

*****